

समयसार, २७ वाँ कलश है न? फिर से - 'कायात्मनोः व्यवहारतः एकत्वं' काया शब्द से (आशय) शरीर, कर्म, राग-द्वेष आदि परिणाम, ये सब काया / शरीर में जाते हैं। समझ में आया? फिर शब्द है 'आत्म-अंगयोः' अन्तिम शब्द है न? आत्म अंगयो — अंग शब्द से कलश टीका में कर्म की उपाधि ली है। एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर शरीर, कर्म, कर्म की उपाधि अर्थात् पुण्य और पाप के भाव, कर्म, अंग काया शरीर में चले जाते हैं। यहाँ अन्दर में है 'कायात्मनोः व्यवहारतः एकत्वं' शरीर और आत्मा के व्यवहारनय से एकत्व.... कथनमात्र से, आहाहा! लोक रूढ़ि से, लोक में कहते हैं — इस अपेक्षा से कहा जाता है। 'निश्चयात् न' निश्चयनय से नहीं है;.... है? भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञायक, जिसका शरीर है — ज्ञायक ही जिसका शरीर है। आहाहा! वह और पुण्य तथा पाप के भाव ये सब काया / शरीर में जाते हैं (अन्तरगर्भित हैं)। एक ओर आत्माराम और एक ओर रागादि गाँव। आहाहा! शरीर और आत्मा के व्यवहारनय

से एकत्व है, किन्तु निश्चयनय से नहीं है; 'वपुषः स्तुत्या नुः स्तोत्रं व्यवहारतः अस्ति' इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा-पुरुष का स्तवन.... आत्मा / पुरुष-भगवान का स्तवन व्यवहारनय से हुआ कहलाता है,.... व्यवहारनय से... आहाहा! 'तत्त्वतः तत् न' तत्त्व से वह नहीं। आहाहा! निश्चयनय से नहीं; निश्चय से तो 'चित्स्तुत्या एव' चैतन्य के स्तवन से ही.... आहाहा! चैतन्य का स्तवन का अर्थ? चैतन्य के.... तीन बोल लिए, लेते हैं। चैतन्य के स्तवन से ही 'चितः स्तोत्रं भवति' चैतन्य का स्तवन होता है। वह चैतन्य का स्तवन यहाँ जितेन्द्रिय आया, देखो! आहाहा! चैतन्य भगवान का स्तवन जितेन्द्रिय, राग, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और शरीर आदि में देव-गुरु-शास्त्र आदि सब। आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा और एक ओर राग से (लेकर) सब चीजें। आहाहा! उनको भिन्न करना, ज्ञान लक्षण से आत्मा का अनुभव करना, वह जितेन्द्रिय-चैतन्य की प्रथम स्तुति कही जाती है। आहाहा! ऐसी बात है।

दूसरी जितमोह, है? अपने आ गया है। ऐसा जितेन्द्रिय होने पर भी, सम्यग्दृष्टि हुआ, मुनिपना हुआ, आनन्द की धारा प्रगट हुई, तथापि अभी कर्म का जो उदय है, उस ओर का झुकाव भाव्य-विकारदशा ज्ञानी को भी होती है। आहाहा! राग-द्वेष आदि, ज्ञानी को - समकित्ती को - अनुभवी को, वह रागादिभाव, कर्म के अनुसरण... पूर्ण अनुसरण नहीं किया तथा भगवान का पूर्ण अनुसरण नहीं किया.... क्या कहा? यदि कर्म का पूर्ण अनुसरण हो, तब तो एकत्वबुद्धि पर में चले जाये। और आत्मा में पूर्ण अनुसरण हो तो पूर्ण वीतरागता हो जाये। आहाहा! अतः जब तक आत्मा ने अपना स्वरूप — राग-द्वेष, पुण्य-पाप और शरीर वाणी से, देव-गुरु से भिन्न — ज्ञानस्वरूपी प्रभु, राग से भिन्न का अनुभव हो तो वह चैतन्य का स्वीकार और स्तुति की, सत्कार किया। यह पहले नम्बर की, पहले प्रकार की स्तुति है। आहाहा! बाद में भी समकित्ती — अनुभवी को भी, कर्म के उदय का अनुसरण सर्वथा गया नहीं; सर्वथा गया हो तो सर्वथा आत्मा का आश्रय ले लिया हो, सर्वथा गया नहीं; इसलिए कर्म के निमित्त के लक्ष्य में राग-द्वेष दुःख आदि की दशा ज्ञानी को भी, समकित्ती को भी, अनुभवियों को भी, मुनियों को भी होती है। उसको अपने स्वभाव का उग्र अनुसरण करके उस रागादि-क्रोधादि को दबा देना, वह दूसरे प्रकार की स्तुति है।

यह चैतन्यस्तुति आया न, देखो, है ? 'चित्तस्तुत्या एव' इसकी व्याख्या है। आहाहा! यह जितमोह, बाद में क्षीणमोह। अभी रागादि को उपशम कर दिया। अनुभवी जीव (ने) स्वभाव का आश्रय लेकर (उपशम कर दिया) परन्तु अभी उनका क्षय नहीं किया। अतः सत्ता में जो रागादि हैं, उनको स्वभाव का उग्र आश्रय लेकर राग की धारा का नाश करना और स्वभाव का उग्र आश्रय लेना, वह तीसरे प्रकार की ऊँची स्तुति है। समझ में आया ? ऐसी कठिन बातें हैं। यह कहा न ? 'सा एवं भवेत्' सा अर्थात् वह स्तुति, चैतन्य का स्तवन यहाँ 'एवं भवेत्' जितेन्द्रिय, जितमोह, क्षीणमोह इत्यादि रूप से कहा वैसा है।... इत्यादि नाम, बाद में भी अनेक प्रकार के विकल्प आदि हैं। यहाँ धर्मी को असंख्य प्रकार के (विकल्प आदि हैं), अपने स्वभाव का अनुसरण करके उन्हें नाश करना, यह आत्मा के स्वभाव की प्रशंसा कहो, स्तुति कहो, अन्तर में उग्र एकाग्रता कहो। ऐसी बात है। वापस इत्यादि कहा न ?

टीका में आया था न ? सोलह सूत्र — पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, और काया इत्यादि का और इनके अतिरिक्त भी अन्य असंख्य प्रकार का विभाव - जयसेनाचार्य में है। अमृतचन्द्राचार्य में — उपदेश से अन्य भी विचार कर लेना इतना। आहाहा!

थोड़े में कितना समाहित कर दिया है, आहाहा! भगवान् पूर्णानन्द के नाथ का दृष्टि में स्वीकार करना, अनुभव करना, वह आत्मा की स्तुति कही जाती है। आहाहा! उस स्तुति के तीन प्रकार लिये हैं न ? जितेन्द्रिय, जितमोह, और क्षीणमोह इत्यादिरूप से कहा जाता है। 'अतः तीर्थकरस्तवोत्तरबलात्' अज्ञानी ने तीर्थकर के स्तवन का जो प्रश्न किया था.... कि तीर्थकर का स्तवन करते हो तो शरीर का स्तवन करते हो, उनके अतिशय का करते हो, वह तो आत्मा है ऐसा हम मानते हैं। हम भी तीर्थकर के शरीर, वाणी, ऐसे हैं, तुम्हारी वाणी ऐसी है, तुम ऐसे हो... अज्ञानी ने तीर्थकर के स्तवन का जो प्रश्न किया था उसका इस प्रकार नयविभाग से उत्तर दिया है;.... जो नयविभाग कहा था, वह व्यवहारनय से कहा था; परमार्थनय से नहीं। ऐसे नय के बंटवारे से — विभाग से यहाँ कहा था। आहाहा! अरे, आहा! ऐसा उत्तर दिया, है ? जिसके बल से यह सिद्ध हुआ कि 'आत्म-अंगयोः एकत्वं न'..... पहले ऐसा लिया था 'कायात्मनोः व्यवहारतः एकत्वं'

— वह तो कथनमात्र से कहा था। समझ में आया ? यहाँ 'आत्म-अंगयोः एकत्वं न' भगवान आत्मा आनन्द ज्ञायकस्वरूप और 'अंगयोः' अर्थात् कर्म, शरीर और कर्म की उपाधि से अपने में उत्पन्न हुआ विकार। आहाहा! वह भिन्नः — निश्चय से दोनों का एकत्व नहीं है। समझ में आया ? आत्मा, आत्मा है न ? 'आत्म-अंगयोः' अंगयो अर्थात् शरीर, आदि अर्थात् कर्म की उपाधि, कर्म, शरीर, और उसके निमित्त के अवलम्बन के आश्रय से जो विकार होता है, वह सब अंग में जाता है। आहाहा! है ? आत्मा से भिन्न अंग में जाता है। शरीर, शरीर... आहाहा! विकारीभाव है वह भी वास्तव में कार्मणशरीर है। भिन्न करना है न ? कर्म और निमित्त के अनुसरण से हुआ विकार, उस सबको शरीर और कर्म की उपाधि कहा गया है। भगवान उससे भिन्न है। आहाहा! ऐसा एकत्व नहीं है। आहाहा!

### कलश - २८

अब, फिर इस अर्थ के जानने से भेदज्ञान की सिद्धि होती है इस अर्थ का सूचक काव्य कहते हैं —

( मालिनी )

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां  
नयविभजनयुक्त्याऽत्यंतमुच्छादितायाम् ।  
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य  
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटनेक एव ॥२८ ॥

एवमयमनादिमोहसन्ताननिरूपितात्मशरीरैकत्वसंस्कारतयात्यन्तमप्रतिबुद्धोऽपि प्रसभोज्जृम्भिततत्त्वज्ञानज्योतिर्नेत्रविकारीव प्रकटोद्घाटितपटलष्टसितिप्रतिबुद्धः (?) साक्षात् द्रष्टारं स्वं स्वयमेव हि विज्ञाय श्रद्धाय च तं चैवानुचरितुकामः स्वात्माराम-स्यास्यान्यद्रव्याणां प्रत्याख्यानं किं स्यादिति पृच्छन्नित्थं वाच्यः—

श्लोकार्थः : [ परिचित तत्त्वैः ] जिन्होंने वस्तु के यथार्थ स्वरूप को परिचयरूप

किया है ऐसे मुनियों ने [ आत्म-काय-एकतायां ] जब आत्मा और शरीर के एकत्व को [ इति नय-विभजन-युक्त्या ] इस प्रकार नयविभाग की युक्ति के द्वारा [ अत्यन्तम् उच्छादितायाम् ] जड़मूल से उखाड़ फेंका है — उसका अत्यन्त निषेध किया है, तब अपने [ स्व-पर-रभस-कृष्टः प्रस्फुटन् एकः एव ] निजरस के वेग से आकृष्ट हुए प्रगट होनेवाले एक स्वरूप होकर [ कस्य ] किस पुरुष को वह [ बोधः ] ज्ञान [ अद्य एव ] तत्काल ही [ बोधं ] यथार्थपने को [ न अवतरित ] प्राप्त न होगा ? अवश्य ही होगा ।

भावार्थ : निश्चय-व्यवहारनय के विभाग से आत्मा और पर का अत्यन्त भेद बताया है; उसे जानकर, ऐसा कौन पुरुष है जिसे भेदज्ञान न हो ? होता ही है; क्योंकि जब ज्ञान अपने स्वरस से स्वयं अपने स्वरूप को जानता है, तब अवश्य ही ज्ञान अपने आत्मा को पर से भिन्न ही बतलाता है । कोई दीर्घ संसारी ही हो तो उसकी यहाँ कोई बात नहीं है ॥२८ ॥

इस प्रकार, अप्रतिबुद्ध ने जो यह कहा था कि — ‘हमारा तो यह निश्चय है कि शरीर ही आत्मा है’ उसका निराकरण किया ।

इस प्रकार यह अज्ञानी जीव अनादिकालीन मोह के सन्तान से निरूपित आत्मा और शरीर के एकत्व के संस्कार से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, वह अब तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति के प्रगट उदय होने से नेत्र के विकार की भाँति ( जैसे किसी पुरुष की आँखों में विकार था तब उसे वर्णादिक अन्यथा दीखते थे और जब नेत्र विकार दूर हो गया तब वे ज्यों के त्यों-यथार्थ दिखायी देने लगे, इसी प्रकार ) पटल समान आवरण कर्मों के भलीभाँति उघड़ जाने से प्रतिबुद्ध हो गया और साक्षात् द्रष्टा आपको अपने से ही जानकर तथा श्रद्धान करके उसी का आचरण करने का इच्छुक होता हुआ पूछता है कि ‘इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान ( त्यागना ) क्या है ?’ उसको आचार्य इस प्रकार कहते हैं कि —

---

कलश - २८ पर प्रवचन

---

अब, फिर इस अर्थ के जानने से भेदज्ञान की सिद्धि होती है.... यह जानने से आत्मा का अनुभव होता है । आहाहा ! इस अर्थ का सूचक काव्य कहते हैं —

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां  
 नयविभजनयुक्त्याऽत्यंतमुच्छादितायाम् ।  
 अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य  
 स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटत्रेक एव ॥२८ ॥

२८ ! सन्तों की वाणी ! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। आहाहा ! 'परिचित तत्त्वैः' जिन्होंने वस्तु के यथार्थ स्वरूप को परिचयरूप किया है — ऐसे मुनियों.... अथवा सर्वज्ञों, 'परिचित' जिन्होंने तत्त्व का परिचय बहुत किया है — सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है, अथवा मुनियों ने-भावलिङ्गी सन्त, जिन्होंने तत्त्व — आनन्द के नाथ भगवान का परिचय बहुत किया। आहाहा ! समझ में आया ? 'परिचित तत्त्वैः' जिन्होंने वस्तु के.... तत्त्व अर्थात् वस्तु; परिचित अर्थात् स्वरूप का परिचय किया। आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द का जिनने 'परिचित'—समस्त प्रकार से परिचय किया तो सर्वज्ञ हुआ परन्तु उसकी निचली दशा में भी परिचय किया। आहाहा ! तो मुनि हुआ। ऐसी बातें हैं ! भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का एकदम पूर्ण परिचय किया तो सर्वज्ञ हुआ और उसका सर्वज्ञ के अतिरिक्त अपनी योग्यता से जो अपना पूर्ण परिचय किया तो मुनिदशा हुई। आहाहा ! कर्म का इतना परिचय छूट गया। समझ में आया ? यह ऐसा कठिन मार्ग है बापू !

अरे ! अनन्त काल से दुःख में जल रहा है, दुःख से जल गया है। कषाय की अग्नि से इसकी शान्ति जल गयी है, पर्याय में, हों ! वस्तु तो है वह है, आहाहा ! यह कषाय अग्नि से जला हुआ... आगे कहेंगे इसमें। 'नय-विभजन-युक्त्या आत्म एकताया' आहाहा ! उसमें - कलश टीका में ऐसा लिखा है भाई ! कि भगवान आत्मा, राग और पुण्य व शरीर आदि के एकत्व से मरण को प्राप्त हो रहा है। आहाहा ! कलश-टीका में उसका ऐसा अर्थ किया है। कलश-टीका है न ? राजमलजी की, कितने में है ? २८ वाँ कलश ! आहा !

देखो, 'उच्छादितायाम्' है न ? आया न ? 'नय-विभजन-युक्त्या' जड़-मूल से उखाड़ फेंका है। है न ? जड़-मूल से उखाड़ फेंका है - उसका अर्थ यहाँ किया है — जिस प्रकार ढँकी निधि को प्रगट करते हैं, उसी प्रकार जीवद्रव्य प्रगट ही है.. अन्दर भगवान प्रगट चैतन्य जलहल ज्योति (है) परन्तु कर्म संयोग से ढँका हुआ होने से राग

और पुण्य-पाप के भाव में ढँक गया। आहाहा! मरण को प्राप्त हो रहा था, मानो है ही नहीं। आहाहा! आहाहा! मानो कि शरीर और पुण्य-पाप और भाव वे ही हैं। आहाहा! ऐसे अस्तित्व में भगवान का पूर्ण अस्तित्व मरणतुल्य हो गया। बालचन्द्रजी! आहाहा! श्रीमद् में भी आता है न? सोलह वर्ष की उम्र (में) 'तू क्यों क्षण-क्षण भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है' श्रीमद् राजचन्द्र - सोलह वर्ष की उम्र में (लिखा है)। समकित तो बाद में पाया। इससे पहले देह के सोलह वर्ष, देह के न? आत्मा तो अनादि अनन्त है। वे ऐसा कहते हैं। 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला' आहाहा! चौरासी के अवतार किये प्रभु! परन्तु यह मनुष्य का भव पाया और फेरा नहीं मिटाया।

'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है' पुण्य में सुख है, स्त्री में सुख है, इज्जत में सुख है, धूल में सुख है, बाहर में सुख है। सुख प्राप्त करने जाने पर सुख दूर होता है। भगवान आनन्द का नाश होता है, वहाँ 'तू क्यों क्षण-क्षण भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है' फिर तो विशेष कहा है —

'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।  
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धिनय पर तोलिये ॥  
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।  
नहिं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है ॥'

आहाहा! सोलह वर्ष में, बालचन्द्रजी! (यह लिखा था।) बहुत क्षयोपशम लेकर पूर्वभव में से आये थे। आहाहा! यह कहते हैं कि प्रतिक्षण भयंकर भाव-मरण... प्रभु! यह पुण्य और पाप और इनके फल को अपना मानकर प्रतिक्षण तेरा भयंकर भावमरण हो रहा है; द्रव्यमरण तो जब शरीर छूटेगा तब होगा। आहाहा! जीवित ज्योत प्रभु अन्दर चैतन्यस्वरूप भगवान, उसके अस्तित्व की मान्यता (नहीं) स्वभाव का स्वीकार नहीं और यह रागादिक - पुण्यादिक फल आया यह पैसा-धूल, स्त्री, कुटुम्ब परिवार, उसका तुझे माहात्म्य... आहाहा! तेरे स्वरूप का भावमरण हुआ है, क्षण-क्षण में मृत्यु होती है प्रभु! आहाहा! 'तू क्यों क्षण-क्षण भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है', यह राग और राग

के पुण्य-बन्धन और इनका फल संयोग, इसके प्रेम में प्रभु तू कहाँ रचपच रहा है, भाई! आहाहा! तेरी जीवित ज्योति चैतन्य का तू अनादर करके और मरणतुल्य कर दिया। सुमेरुमलजी! आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं 'उच्छादितायाम् अत्यन्तम्' जड़मूल से उखाड़ फेंका है.... उसके अर्थ में लिया है यहाँ। समझे? अत्यन्त निषेध किया था, किया है। क्या? राग और शरीर और पुण्य का फल मेरा है — ऐसी तेरी मान्यता में तेरा मरण हुआ था प्रभु! तेरी जीवित ज्योति का तूने तिरस्कार किया था। यह मैं हूँ, पुण्यवन्त हूँ, पापी हूँ, और शरीरवाला हूँ, स्त्री-परिवारवाला हूँ, बड़ी इज्जतवाला हूँ, लक्ष्मी, अधिकार बढ़ा, पचास-पचास हजार का वेतन महीने मासिक कितना बढ़ा,.... क्या बढ़ा प्रभु! व्यापार में एकदम पाँच लाख की आमदनी, मासिक बढ़ गयी, बढ़ा गया? क्या बढ़ गया प्रभु! वह तो संसार बढ़ा है तेरा। यहाँ कहते हैं 'अत्यन्तम् उच्छादितायाम्' भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, ज्ञानलक्ष्मी का भण्डार, आनन्दलक्ष्मी का भण्डार, उसे राग और शरीरादि से भिन्न निश्चयनय से कर दिया। 'उच्छादितायाम्' जड़मूल से उखाड़ दिया। तेरे साथ राग का सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है। यह जो मरणतुल्य हुआ था... आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति महाप्रभु अपने चैतन्यस्वभाव से जीवित ज्योति से अन्दर जीता था, जीवत्वशक्ति आती है न पहली? ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि सत्ता से जीवित वह जीवन है, उसका जीवन। उस जीवन को न स्वीकार कर, बाहर के पुण्य और पाप के भाव और उनका फल बन्ध और उनका फल संयोग, उनके माहात्म्य में, प्रभु! तेरी चीज तो मरणतुल्य हो गयी। आहाहा! वह 'उच्छादितायाम्' उसको छेद कर दिया। वह चीज तेरी नहीं। तू जिसको अपना जीवन मानता है, पुण्य से और पाप से और शरीर से, वह तेरा जीवन नहीं है, नाथ! प्रभु! तू भिन्न है न नाथ! आहाहा! इस रागादिकभाव को तो जड़मूल से उखाड़ दिया, मूल में से उखाड़ दिया। फिर उत्पन्न न हो — ऐसा उखाड़ दिया — ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि उसका अत्यन्त निषेध किया है,.... आहाहा! तब... तब अपने 'स्व-पर-रभस-कृष्टः प्रस्फुटन् एकः एव' निजरस के वेग से.... आहाहा! राग



के रस के वेग में जो तुम चले जा रहे थे, तब तेरी चीज मृत्यु को प्राप्त होती थी, तो तुमको बता दिया प्रभु! वह तेरी चीज नहीं, तुझमें नहीं; तू उससे भिन्न है। अतः ऐसे अन्तररस – निजरस के वेग से आकृष्ट.... आहाहा! अपने आनन्दरस के वेग से आकृष्ट हुए प्रगट होनेवाले एक स्वरूप होकर.... भगवान आत्मा! अनेकपने को अपना मानता था, उसे छोड़कर, अपना भेद बता दिया कि तुम यह नहीं तो एकरस से प्रगट होनेवाला आत्मा, आहाहा! यहाँ तो आचार्य जरा उलहाना देते हैं। किस पुरुष को वह ज्ञान तत्काल ही यथार्थपने को प्राप्त न होगा? अरे! किस आत्मा को ऐसा प्राप्त नहीं होगा? आहाहा!

भगवान! तुझको तेरी चीज बता दी; राग — दया, दान, व्रत, भक्ति, शरीर, कर्म आदि से भिन्न प्रभु! तेरा जीवत्व / जीवन है न अन्दर त्रिकाली, उसे भिन्न बता दिया तुझे। प्रभु! अब तुझको क्यों आत्मज्ञान न हो? आहाहा! रतिभाई! ऐसा मार्ग है। सन्तों की वाणी तो देखो! एक तो यह कि पर से एकत्व तो जड़मूल से उखाड़ दिया, जड़ में से निकाल दिया। आहाहा! अब कभी एकत्व नहीं होता। आहाहा! देखो, जोर तो देखो! कि भाई! समकित पाने के बाद गिर जायेगा, यह चीज यहाँ है ही नहीं। आहाहा! राग और उसका फल बंधन और उसका फल अच्छा संयोग – राग की सामग्री.... राग ग्राम कहा है न भाई! एक जगह कहते हैं, रागग्राम। यह रागग्राम अर्थात् राग और राग का समूह और उसका फल, यह सब रागग्राम। एक और आत्मगाँव और एक ओर रागग्राम। आहाहा!

उसको जड़मूल से निकाल दिया न नाथ! तुझको बता दिया न, तेरी चीज भिन्न है न अन्दर? आहाहा! कोई सम्बन्ध (नहीं है) राग और पर के साथ प्रभु! तेरा द्रव्यस्वभाव, जीवित ज्योति विराजमान है, शाश्वत् तत्त्व, ध्रुव तत्त्व (विराजमान है) आहाहा! तुझको भिन्न बताया है न नाथ! तुझको क्यों ज्ञान नहीं हो? आहाहा! एक तो क्यों ज्ञान न हो और जड़ मूल से निकाल दिया तो यह ज्ञान हो, इसके बाद एकत्वबुद्धि में नहीं आयेगा — ऐसा ज्ञान, प्रभु यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सन्तों ने तो अमृत का झरना बहाया है। आहाहा!

इसको निवृत्ति नहीं मिलती, फुर्सत नहीं मिलती, स्त्री-पुत्र और परिवार में धन्धे में मर गया है पूरे दिन। आहाहा! न हो तो किसी का लेकर फिर वापस उपाधि ओढ़ता है।

श्रोता : गोद लेता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वापिस गोद लेता है । आहाहा ! क्या करना है प्रभु तुझे ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं सुन तो सही प्रभु ! तेरी चीज तो सबसे भिन्न है न ? भिन्न को तुझे एकत्व करना है ? आहाहा ! प्रभु कहाँ जाना है तुझे ? आचार्य महाराज तो बहुत उल्हाना देते हैं । ठपका ( इस गुजराती शब्द को ) क्या कहते हैं ? उल्हाना, उल्हाना कहते हैं न ? उल्हाना... प्रभु ! तेरी महासत्ता चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु, रागादि से मूल से छेद करके-विच्छेद करके तुझको बतलाया है न प्रभु ! आहाहा ! तो किस आत्मा को आत्मज्ञान नहीं होगा ? होगा ही - ऐसा कहते हैं । समझ में आया ?

यह तो अभी पहले नम्बर की स्तुति का प्रश्न चलता है । समझ में आया ? बाद में धर्मी को, ज्ञानी को, अनुभवी को राग तो रहता है परन्तु स्वभाव सन्मुख होकर उस राग को कौन नाश नहीं करेगा ? आहाहा ! 'एकः एव कस्य बोधः अद्य एव' है ? आज ही । आहाहा ! प्रभु ! तू अतीन्द्रिय आनन्द के मक्खन का दल पड़ा है न ऐसा ! आहाहा ! और रागादि आकुलता, यह सब चीज तो भिन्न है । भिन्न है तो भिन्न करके एकत्व स्वभाव को कौन नहीं प्रगट करेगा ? आहाहा ! समझ में आया ? तत्काल ही यथार्थपने को प्राप्त न होगा ? अवश्य ही होगा । आहाहा ! कितनी बात करते हैं ? आहाहा !

एक तो ऐसा कहते हैं कि उस विकल्प से... है ? आदि ( से लेकर ) सब चीज, वह तेरी चीज में नहीं है और तू उसमें नहीं है, ऐसा तुझको पर के भाव को मूल में से उच्छेद कर दिया, उखाड़ कर निकाल डाला । आहाहा ! गधा होता है न गधा ? घास खाता है तो मूल में से उखाड़कर खाता है । गाय है घास खाती है तो ऊपर-ऊपर से खाती है, मूल को नहीं निकालती । इस कारण मुनि को गोचरी कहा है न ? घास है ( ऊपर से खाते हैं, ) मूल सुरक्षित रखते हैं, फिर वापस उग सके ।

इसी प्रकार यहाँ गधा शब्द से पण्डित, ज्ञानी, धर्मात्मा - वह गधा ! यहाँ धर्मात्मा मूल में से राग का उच्छेद करके अपना अनुभव कौन नहीं करे ? ऐसी बात है प्रभु ! आहाहा ! पश्चात् राग रहेगा,.... यह तो भिन्न बताया इतना.... परन्तु अस्थिरता का राग रहेगा, अस्थिरता का राग वहाँ आयेगा, ज्ञानी को-अनुभवी को भी दुःख होगा, वह भी

उसको भिन्न करके, अन्दर में एकाग्र होकर कौन उसका नाश नहीं करेगा ? आहाहा ! परन्तु वह भविष्य में नाश करेगा और केवलज्ञान पायेगा — ऐसा कहते हैं । आहाहा ! रात्रि को कहा था न, नहीं ? समकिती ज्ञानी, धर्मी, अनुभवी जीव को भी, मुनि को भी प्रतिक्रमण, परिहार — ऐसा शुभभाव आता है । सबेरे-शाम प्रतिक्रमण व्यवहार से, भगवान की प्रतिमा का दर्शन, राग से हटने का भाव, यह सब शुभ, यह ज्ञानी को-समकिती को भी आता है । मोक्ष अधिकार में-प्रतिक्रमण, परिहार, परिशरण, निन्दा, गर्हा, यह शुभभाव है तो जहर, आहाहा ! समझ में आया ? समकिती ज्ञानी-अनुभवियों को भी यह भाव आता है । जब तक वीतराग न हो, तब (तक) यह भाव शाम-सबेरे प्रतिक्रमण का विकल्प, है तो शुभ, है तो जहर, है तो दुःख; अशुभभाव में तीव्र दुःख है, शुभभाव में मन्द मगर दुःख है, परन्तु दुःख है, अतः उसे रात्रि में कहा था कि उसमें लिखा है कि क्यों उसको जहर-दुःख कहा ? कि वहाँ तो कर्तृत्वबुद्धि है अर्थात् करने योग्य (है ऐसी) बुद्धि वहाँ न लेना परन्तु वहाँ राग का परिणमन है । अभी मुनि को, ज्ञानी को, समकिती को भी राग का परिणमन है । एकत्वबुद्धि गयी, अनुभव हुआ, समकित हुआ — सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान हुआ परन्तु सम्यक्चारित्र में कमी है । मुनियों को भी शाम-सबेरे शास्त्र कहे ऐसा व्यवहार प्रतिक्रमण का भाव आता है, है परन्तु है वह जहर का प्याला-विषकुम्भ है, राग है, आकुलता है, दुःख है, आहाहा ! अरे...रे ! अतः उसको छोड़कर स्वरूप में-आनन्द में कौन नहीं रहेगा, कहते हैं ? मुनि को भी कहते हैं । आहाहा ! आनन्द का नाथ भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का सुखधाम 'स्वयं ज्योति सुखधाम' आनन्द का क्षेत्र है तो उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द पकता है - ऐसी चीज है ।

आहाहा ! आचार्य ने ऐसा कहा 'स्वरसरभस उग्र कृष्ट' आहाहा ! आकृष्ट हुए प्रगट होनेवाले एक स्वरूप होकर.... आहाहा ! किस आत्मा को ज्ञान तत्काल-आत्मज्ञान तत्काल उस यथार्थपने को प्राप्त नहीं होगा ? अवश्य होगा । आहाहा ! 'अद्य एव बोधः' है शब्द ? 'अद्य एव बोधं' आज ही तत्काल ही.... आहाहा ! आहाहा ! देखो, यह श्लोक तो देखो श्लोक ! आहाहा ! जड़मूल से उखाड़कर चैतन्य की भिन्नता का अनुभव किसे नहीं होगा ? और फिर भी राग का भाव्य भाव ज्ञानी को होता है, उसको भी छोड़कर स्वभाव का अनुभव करके उसको नाश कौन नहीं करेगा ? आहाहा ! समझ में आया ? मुनि

अपनी भी बात करते हैं। आहाहा! कि हमारे भी अभी जरा राग है, विकल्प आता है परन्तु हमको वह भिन्न अनुभव हुआ और अब उसको भिन्न करके नाश क्यों नहीं करेंगे? आहाहा! भविष्य काल में उसका नाश करूँगा, किन्तु यहाँ तो तत्काल नाश करूँगा – ऐसा लिया है। समझ में आया? 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण...' श्रीमद् में आता है — 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है, श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा पड़ जाता है।' श्वेताम्बर की लाईन विपरीत... विपरीतपणा श्रीमद् में आता है। श्रीमद् राजचन्द्र! ऐसी वाणी है सन्तों की। आहाहा!

**'परिचित तत्त्वैः'** जिन मुनियों ने अपने आनन्दस्वरूप भगवान तत्त्व का परिचय किया है। आहाहा! राग का परिचय छोड़ दिया है, थोड़ा परिचय अस्थिरता का है, उसको न गिनकर, अपना परिचय बहुत किया है, वे सन्त, जगत को जाहिर करते हैं कि हम जब राग और विकल्प से, भगवान निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु भिन्न हैं और मूल में से उखाड़ कर राग का विच्छेद कर दिया, तेरी चीज में है ही नहीं, तेरी चीज उससे भिन्न है — तो ऐसा सुनकर, कौन प्राणी ऐसा होगा.... आहाहा! कि अपना आत्मज्ञान नहीं होगा? समझ में आया? झांझरीजी! देखो, यह दिगम्बर वाणी! आहाहा! कहीं है नहीं। श्वेताम्बर में भी यह चीज है नहीं तो अन्यमत में तो क्या कहना? आहाहा! तीन बात ली है — एक तो हमने जब तेरी चीज को काया और अंग अंगयोः आत्मा, आत्मा को अंग, अंग अर्थात् राग आदि सब चीज से जब भेद करके वस्तुस्थिति ऐसी है — ऐसा बताया और वह भी रागादि को मूल में से उखाड़कर नाश कर बताया, एक बात; तो उसको अन्तर में राग से भिन्न आत्मज्ञान का आत्मबोध क्यों नहीं होगा? होगा ही। आहाहा! अर्थकार ने लिखा है। नीचे है न? कोई दीर्घ संसारी हो वह बात यहाँ नहीं लेनी — भावार्थ में लिखा है। आहाहा! **तत्काल ही यथार्थपने को 'बोधं'** अर्थात् आत्मज्ञान, आत्मा का अनुभव.... आहाहा! दोनों का भिन्नपना बतलाया, और भिन्न है तो तेरी एकत्वबुद्धि पर से क्यों नहीं छूटेगी? और स्वरूप की एकत्वबुद्धि क्यों नहीं होगी? तत्काल होगी। आहाहा! ऐसी बातें! सूक्ष्म बहुत बापू! समयसार भरतक्षेत्र में अद्वैतचक्षु, अजोड़ चक्षु! ऐसा शास्त्र, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी यह है। आहाहा! तेरे माल की मौजूदगी विकार और

विकार के फल की मौजूदगी से भिन्न तुझे बताया न प्रभु! आहाहा! तो वह तत्काल ही, आज ही,... आहाहा!

**भावार्थ - निश्चय-व्यवहारनय के विभाग से आत्मा और पर का अत्यन्त भेद बताया है; उसे जानकर, ऐसा कौन पुरुष है, जिसे भेदज्ञान न हो ?.... आहाहा! होता ही है;.... पंचम काल है, ऐसा है और वैसा है, वह कुछ तुझे रोकता नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि जब ज्ञान अपने स्वरस से स्वयं अपने स्वरूप को जानता है,.... देखो, यह आया। 'स्व-पर-रभस-कृष्टः' आत्मा अपने स्वरस से; ज्ञान अर्थात् आत्मा; अपने स्वरस से अपने आनन्द के रस से स्वयं अपने स्वरूप को जानता है, राग के रस से नहीं, अपने आनन्द के रस से अपने को जानता है। आहाहा!**

सच्चिदानन्द प्रभु अपना, आहाहा! राग से भिन्न आनन्दरस से अपने जानने में क्यों नहीं आता? आहाहा! अपने स्वरूप को जानता है। आहाहा! ज्ञान / आत्मा अपने स्वरस से, स्वरस से स्वयं पर की अपेक्षा बिना, आहाहा! राग की मन्दता थी तो यहाँ स्वरूप का अनुभव हुआ — यह अपेक्षा नहीं है। आहाहा! जब ज्ञान अपने स्वरस से — राग के रस से प्रभु तेरी चीज भिन्न अन्दर है न? ऐसा कहा तो अपने आनन्दरस से अपने को क्यों नहीं जानता? आहाहा! ऐसा कहकर अपने अनुभव में आनन्द आता है, आनन्द से आत्मा का ज्ञान हुआ। आहाहा! स्वयं अपने स्वरूप को जानता है, **अवश्य ही ज्ञान अपने आत्मा को पर से भिन्न ही बतलाता है।** आहाहा! **कोई दीर्घ संसारी....** वह कुछ नहीं, यहाँ वह बात नहीं, यहाँ वह नहीं। आहाहा!

देखो तो, आहाहा! यह कलश! देखो! जैसे मन्दिर के ऊपर स्वर्ण का कलश चढ़ाते हैं, वैसे यह टीका के ऊपर कलश चढ़ाया। प्रभु! तेरी चीज तो है न नाथ, जीवित ज्योति अपना ज्ञान और आनन्दस्वरूप से जीवितज्योति चैतन्य है। वह राग से जीता है और पर से जीता है — ऐसा नहीं है। अपना स्वरूप जीवन अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता से तेरा जीवन है न? आहाहा! ऐसे जीवन को कौन नहीं पकड़े - ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! इसमें वाद-विवाद और झगड़ा को अवकाश कहाँ है? समझ में आया?

इस प्रकार, अप्रतिबुद्ध ने... अज्ञानी ने जो यह कहा था कि — ‘हमारा तो यह निश्चय है कि शरीर ही.... रागादि शरीर ही आत्मा है’.... हमें तो यह रागादि शरीर (ही) आत्मा है। उसका निराकरण किया। (क्या कहा) ? उसका निराकरण कर दिया। आहाहा!

इस प्रकार यह अज्ञानी जीव अनादिकालीन मोह के सन्तान से.... मोह की सन्तान — पुण्य-पाप, राग-द्वेष आदि (सहित) निरूपित आत्मा और शरीर के एकत्व के संस्कार से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था,.... देखो, कोई कहता है कि यह समयसार तो मुनियों के लिए है, यहाँ तो अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था। आहाहा! अरे! एकत्व के संस्कार से राग और शरीर... क्योंकि देखनेवाले ने देखनेवाले को देखा नहीं, जाननेवाले ने जाननेवाले को जाना नहीं, उसे (पर को) जानता है तो उसको यह संस्कार रह गया। राग को जाना, शरीर को जाना, वह मैं हूँ। समझ में आया ? परन्तु जाननेवाले ने जाननेवाले को नहीं जाना, जाननेवाले को नहीं जाना, देखनेवाले को नहीं देखा। आहाहा!

वह अब तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति के प्रगट उदय होने से.... वह जब तत्त्वज्ञानस्वरूप ज्योति-भगवान आनन्द की चैतन्य ज्योति प्रगट उदय होने से.... नेत्र के विकार की भाँति ( जैसे किसी पुरुष की आँखों में विकार था, तब उसे वर्णादिक अन्यथा दीखते थे.... ) आँख में विकार था, तब वर्णादिक अनेक प्रकार के दिखते हैं। पीलिया होता है न पीलिया, ( तो ) उस पीलिया में सब चीज पीली दिखती है। ( और जब नेत्र विकार दूर हो गया तब वे ज्यों के त्यों-यथार्थ दिखायी देने लगे,.... ) आहाहा! ( इसी प्रकार ) पटल समान आवरण कर्मों के भलीभाँति उघड़ जाने से.... रागादि की एकताबुद्धि का नाश करके। आहाहा! प्रतिबुद्ध हो गया.... मिथ्याश्रद्धा में-मिथ्याज्ञान में परवस्तु अपनी है ऐसा दिखता था। जैसे पीलियावाले को सब पीला दिखता है, आहाहा! पटल समान आवरण। आहाहा! है ? विकार की भाँति, पटल समान आवरण के — कर्मों के भलीभाँति उखड़ जाने से प्रतिबुद्ध हो गया और साक्षात् द्रष्टा आपको अपने से ही जानकर.... अपने से अपने को जानकर, यह आनन्द, ज्ञान, दर्शन पर्याय से अपने को जानकर। आहाहा! तथा श्रद्धान करके.... अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव...

उसी का आचरण करने का इच्छुक.... आहाहा! अभी अस्थिरता बाकी है। सम्यग्दृष्टि को, अनुभवी को भी अभी रागभाव बाकी है, दोष है, दुःख है, अस्थिरता है। आहाहा! आहाहा! **श्रद्धान करके उसी का आचरण करने का....** अभी सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु अभी अन्दर अव्रत का राग है, राग है शुभ का राग है, अशुभराग है। धर्मी को-अनुभवी को भी भोग की वासना का राग है। आहाहा! उसे छोड़कर स्वरूप का आचरण करने का इच्छुक। समझ में आया? आहाहा! **उसी का आचरण करने का** अर्थात् जैसा ज्ञानस्वरूप भगवान पर से भिन्न देखा, उसका **आचरण करने का अभिलाषी**। अभी उसका भान हुआ परन्तु अभी आचरण में राग — पुण्य-पाप का भाव आचरण में आता है। आहाहा! अनुभवी, समकिति, ज्ञानी को, क्षायिक समकिति को भी... आहा! समझ में आया? आहाहा! ज्ञानी जानता है कि अभी मेरी पर्याय में राग है, दुःख है; मुझे यह दुःख का आचरण छोड़कर आनन्द का आचरण करना है। आहाहा! क्या स्पष्टता! यह सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ तो भी (पूर्णता नहीं है)। उसी का आचरण करने का.... तो अभी आचरण नहीं हुआ अन्दर; चारित्र नहीं हुआ। प्रत्याख्यान लेना है। प्रत्याख्यान अर्थात् राग का अभाव होकर ज्ञानस्वरूप में ज्ञान रमे — ऐसी दशा अभी नहीं हुई। आहाहा! ओहोहो...! सन्तों ने तो अमृत बहाया है। आहाहा! क्या कहा? राग, शरीरादि से भिन्न भगवान आत्मा अनुभव में आया कि मैं ज्ञानानन्द हूँ — ऐसा समकित दर्शन हुआ, तथापि अभी पर्याय में राग का आचरण है, वह दुःखरूप आचरण है। यह अपना आचरण करनेवाला — वह अपने स्वरूप के आचरण का इच्छुक पुरुष पूछता है। आहाहा!

समकिति / ज्ञानी / अनुभवी भी अपने स्वरूप का आचरण अर्थात् स्वरूप में स्थिरता करना, प्रत्याख्यान करना। चारित्र नहीं है, पर्याय में राग है दुःख है, अप्रत्याख्यान है, अव्रतभाव है। आहाहा! आहाहा! **आपको अपने से जानकर श्रद्धान करके...** ज्ञान और श्रद्धा दोनों हुए, सम्यग्ज्ञान भी हुआ, सम्यग्दर्शन भी हुआ। **अब उसी का आचरण करने का...** अभी उसमें चारित्र नहीं है, अचारित्रभाव है, अप्रत्याख्यानभाव है; प्रत्याख्यान नहीं है। स्वरूप में स्थिरता-राग को तजकर / छोड़कर / निराकरण करके अपने स्वरूप में रमना, वह नहीं है। आहाहा! तो वह पूछता है, समकिति पूछता है, धर्मी जीव से अनुभवी

---

है, वह पूछता है। आहाहा! उग्र पुरुषार्थ करना है न? 'इस आत्माराम को अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान ( त्यागना ) क्या है?'.... प्रभु! एकता तो टूट गयी है। हमको आत्मा का ज्ञान हुआ परन्तु राग का त्याग हमें नहीं है, तो राग का त्याग किस तरह से होता है?

विशेष कहेंगे।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव! )